शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 जुलाई 2013

सम्पादकीय

शासन मुक्त शिक्षण से ही समाज में मानवीय मूल्य स्थापित होंगे

मुंशी प्रेमचंद के कर्मभूमि उपन्यास (1931) के प्रथम पृष्ठ पर लिखा है, "हमारे शिक्षालयों में नर्मी को घुसने नहीं दिया जाता। वहां स्थायी रूप से मार्शलला का व्यवहार होता है। कचहरी में पैसे - का राज है, हमारे स्कूलों में भी पैसे का राज है, उससे कहीं कठोर, कहीं निर्दय। देर में आइए तो जुर्माना, न आइए तो जुर्माना, सबक न याद हो तो जुर्माना, किताबें न खरीद सकिए तो जुर्माना, कोई अपराध हो जाए तो जुर्माना,शिक्षालय क्या है, जुर्मानालय है। यही हमारी पश्चिमी शिक्षा का आदर्श है, जिसकी तारीफों के पुल बांधे जाते हैं। यदि ऐसे शिक्षालयों से पैसे पर जान देने वाले, पैसे के लिए गरीबों का गला काटने वाले, पैसे के लिए अपनी आत्मा को बेच देने वाले छात्र निकलते हैं, तो आश्चर्य क्या है ?" आज सुप्रीम कोर्ट 82 वर्ष बाद बदले हुए शब्दों में शिक्षा पर टिप्पणी कर रहा है कि आज की शिक्षा मानव मूल्य देने में नाकाम रही है। आज की शिक्षा मानव व्यवहार में सुधार नहीं कर रही है। ये दोनों उद्धरण हमारे समूचे विकास पर प्रश्नचिह्न लगाने के लिए काफी हैं। गुलामी के दिनों में तो अंग्रेजों की शिक्षा पद्धति को अपनाना हमारी मजबूरी थी, परंतु आजादी के बाद उसी पद्धति को क्यों टिकाए रखा गया। विनोबा ने तो कहा था जैसे 1947 में हमने अपने देश का झंडा बदला वैसे ही शिक्षा में भी बदलाव किया जाना चाहिए। भारतीय शिक्षा पद्धति का मूलमंत्र रहा है 'सा विद्यया विमुक्तये' अर्थात विद्या वही श्रेष्ठ है जिससे मुक्ति प्राप्त हो। वास्तव में भारत देश को विश्वगुरु का दर्जा ब्रह्मविद्या विचार के कारण मिला। यहां के प्राचीन धर्मग्रंथ वेद, उपनिषद, पुराण, दर्शन, रामायण, महाभारत आदि में इसी विद्या की नाना रूपों में चर्चा की गई है। पालि और प्राकृत भाषा में महावीर स्वामी और गौतम बुद्ध ने अपने प्रवचन दिए। मध्यकाल में सतों ने लोकभाषा में इसी ब्रह्मविद्या की चर्चा की। आधुनिक काल में श्री रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, लोकमान्य तिलक, विश्वकवि रवींद्रनाथ टैगोर, महर्षि अरविंद, महात्मा गांधी और संत विनोबा ने प्राचीन ब्रह्मविद्या और मध्यकालीन भक्ति के समन्वित रूप को सामाजिक धरातल पर पुनः स्थापित करने का भागीरथी प्रयास किया। संत विनोबा ने तो पवनार में ब्रह्मचारी स्त्रियों के लिए 'ब्रह्मविद्या मंदिर' की ही स्थापना की। इन सभी ने समाज में उच्च नैतिक आदर्श और मूल्यों की स्थापना के लिए अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया। हमारे देश में प्राचीन काल से शिक्षा राज्य सत्ता से स्वतंत्र रही है। रामायण काल में महर्षि वशिष्ठ, विश्वामित्र आदि गुरु के रूप में प्रतिष्ठित थे। राजा दशरथ, राजा जनक पर इन गुरुओं की सत्ता चलती थी। इसी प्रकार योगेश्वर कृष्ण शिक्षा हासिल करने के लिए ब्रज से चलकर उज्जैन आए और महर्षि सांदिपनी के आश्रम में रहकर ज्ञान प्राप्त किया। पंचतंत्र की वह कथा तो प्रसिद्ध ही है जिसमें राजा के चारों राजकुमार महामूर्ख थे। जिन्हें पंडित विष्णुशर्मा ने कथाओं के माध्यम से विद्याप्रवीण बनाया। भारत पर स्थायी असर राजाओं का नहीं आचार्यों का है। आज शिक्षा समाज के हाथ में नहीं, बल्कि सरकार के हाथ में है। इसके परिणामस्वरूप शिक्षा बाजार में

जाकर बैठ गयी है। शिक्षा के छः अंतिम लक्ष्य हो गए हैं पहले तीन हैं पे, प्रमोशन, पेंशन और दूसरे तीन हैं सत्ता, भत्ता, मान्यता। आधुनिक शिक्षा प्राप्त किया हुआ श्रेष्ठ से श्रेष्ठ मस्तिष्क भी इनसे आगे चिंतन प्रस्तुत नहीं कर पा रहा है। मध्यकालीन संतों पर हजारों लोगों ने डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त की है, परंतु उन डिग्रीधारियों में से कोई उच्च कोटि के भक्त संत नहीं बने। शिक्षा क्षेत्र में साधुमहावि-संतों के विद्यालय-द्यालय भी चल रहे हैं, परंतु वहां पर सरकारी पाठ्यक्रमों के हिसाब से अध्ययनपन किया जा रहा है। ध्याअ-शिक्षण सरकारी तंत्र से मुक्त होना चाहिए। शिक्षकों को सरकार तनख्वाह जरूर दे, वह सरकार का कर्तव्य है। परंतु जैसे न्याय विभाग स्वतंत्र है और सुप्रीम कोर्ट में सरकार के खिलाफ भी फैसले दिये जा सकते हैं और दिये गये हैं, जबकि न्यायाधीश को तनख्वाह सरकार से मिलती है। वैसे ही शिक्षणविभाग भी सरकार से - स्वतंत्र होना चाहिए। यह अगर नहीं होगा तो देश के लिए बहुत बड़ा खतरा है। दिमाग की आजादी शिक्षा का प्राण है।

- डॉ. पुष्पेंद्र दुबे